: १७ :

क्रोचे का अभिव्यंजनावाद

१. अभिव्यंजनावाद का स्रोत
२. क्रोचे के दार्शनिक विचार
   (क) सहज ज्ञान
   (ख) तर्क ज्ञान
३. सहजानुभूति
४. कला-सम्बन्धी विचार
५. कला का आनन्द
६. अभिव्यंजनावाद पर आक्षेप

अभिव्यंजनावाद का स्रोत

अभिव्यंजनावाद का मूल स्रोत वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद की उस प्रवृत्ति में है, जो परम्परा, रूढ़ि, नियम आदि का विरोध करती है। आरम्भ में यह एक अत्यन्त शक्तिशाली और स्वस्थ आन्दोलन था, जिसने परम्परावादिता का विरोध कर व्यक्तिवाद पर बल दिया। इसी आन्दोलन के फलस्वरूप 'कला कला के लिए' सिद्धान्त का आविर्भाव हुआ, जिसके मानने वालों ने व्यक्तिवाद पर अगाध आस्था के कारण कहा—

"…each of them held a little candle locked up in the chamber of his soul and by the light of it saw within himself the only reality that mattered."

अर्थात् प्रत्येक कलाकार अपनी आत्मा के आलोक की सहायता से वास्तविक सत्य को देख लेता है। वही सत्य उसे कला के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहिए इनका कथन है कि कलाकार को केवल अपनी व्यक्तिगत दृष्टि (vision) अभिव्यक्त करनी चाहिए अर्थात् सत्य को ज्यों का त्यों प्रस्तुत न कर उसकी व्याख्या अपन आत्मा के आलोक और दृष्टि (vision) के आधार पर करनी चाहिए। ये ल कहते थे "यह हमारा संसार है—चाहे तो ग्रहण करो, चाहे त्याग दो"; क्योंकि उन मत था कि मनुष्य ही सब चीजों की कसौटी है—

"Man is the measure of all things." और इस मत से किसी स्थिति में कोई भी इन्कार नहीं कर सकता।

Scanned by TapScanner

उनके अनुसार काव्य में प्रत्येक वस्तु ग्राह्य है, प्रत्येक अनुभूति या विचार काव्य में प्रस्तुत किया जा सकता है। कवि के मन में जीवन एवं जगत् का जो भी रूप उभर आता है, उसे व्यक्त कर देने में कोई दोष नहीं है।

जिस युग में क्रोचे का जन्म हुआ (१८६६-१९५२ ई०), उस स्वच्छन्दतावादी कला के युग में कहा जाता था कि बच्चों को चित्रकार बनाने के लिए चित्रकला की शिक्षा नहीं देनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से बच्चे के कोमल मन पर दूसरों के विचार अड्डा जमा लेते हैं और वह स्वतन्त्र अभिव्यंजनावाद नहीं कर पाता। निश्चय ही इस प्रकार की धारणाओं को स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। अनर्गलता के सिवाए इसमें और कुछ भी नहीं है।

क्रोचे के दार्शनिक विचार

क्रोचे मूलतः आत्मवादी दार्शनिक थे। इन्होंने कला का विवेचन दर्शन की छाया में किया है। वह आत्मा की मूलतः दो क्रियाएँ मानते हैं—(१) सैद्धान्तिक (२) व्यवहारात्मक। प्रथम के द्वारा मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है और दूसरी के द्वारा जीवन में व्यवहार करता है। वह ज्ञान के भी दो प्रकार मानता है—(१) स्वयंप्रकाश या प्रातिभ-ज्ञान—(Intutive knowledge) (२) तर्क-ज्ञान (Concept knowledge)। स्वयंप्रकाश व्यष्टि का ज्ञान होता है, तर्क-ज्ञान सामान्य का ज्ञान होता है। प्रथम कल्पना से उत्पन्न होता है, दूसरा बुद्धि से प्राप्त होता है। प्रथम द्वारा वस्तुओं के बिम्बों या भावनाओं का निर्माण होता है और दूसरों का सम्बन्ध निश्चयात्मक बुद्धि से होता है और उसमें सामान्य विचारों (concepts) का बोध होता है। पहला कला का उत्पादक होता है, तो दूसरा दर्शन और विज्ञान को जन्म देता है। स्वयं-प्रकाश ज्ञान बौद्धिक ज्ञान से स्वतंत्र होता है। वह एक प्रकार की अलौकिक शक्ति है जो क्षण भर में किसी दृश्य या भावना को अपनाकर उसे साकार मूर्त और सुन्दर रूप दे देती है। स्वयं-प्रकाश ज्ञान बिम्बों की रचना करता है, तो प्रज्ञात्मक ज्ञान-बोध (concepts) की। बुद्धि की सहायता से हम निर्णय करते हैं कि मनुष्य विचारशील प्राणी है, स्वयंप्रकाश ज्ञान (कल्पना) हमारे मन में एक ऐसे प्राणी का बिम्ब अंकित कर देता है जिसमें विचार करने की क्षमता है।

सहजानुभूति

क्रोचे सहज ज्ञान को प्रभाव (impression) तथा संवेदना (sensation) से भिन्न मानता है। उसका मत है कि "जब हम किसी वस्तु की प्रत्यक्ष अनुभूति या संवेदन प्राप्त करते हैं, तब हमारा अन्तर्मन निष्क्रिय रहता है। बाह्य वस्तु की प्रतीति के निर्माण में अन्तर्मन का सहयोग नहीं होता, वह अन्तर्मन की उत्पत्ति नहीं होती।" वह फिर कहता है—"संवेदन अपने निरपेक्ष रूप में यान्त्रिकता-निष्क्रियता है। इसे मानवीय अन्तर्मन महसूस करता है, उत्पन्न नहीं करता।" जब अन्तर्मन संवेदनों को खपा-कर एक कर देता है, तब वे प्रकृतिदत्त अनुभव न रहकर आत्मानुभूति हो जाते हैं, वे यान्त्रिकता की कृति न रहकर कल्पना की सृष्टि हो जाते हैं। अतः सहज ज्ञान यान्त्रिक

Scanned by TapScanner

और निष्क्रिय न होकर ऐसा ज्ञान है जो सहज घट से उतर जाता है। वह प्रभावों की सक्रिय अभिव्यंजना है—

"Every true intitution or representation is also expression. That which does not objectify itself in expression is not intution or representation, but sensation and naturality. The spirit does not obtain intutions otherwise than by making, forming, expressing."

अपनी बात को उदाहरण द्वारा समझाते हुए वे कहते हैं—जब चित्रकार किसी वस्तु की झलक मात्र देखता है, तब हम यह नहीं कह सकते कि उसे सहज ज्ञान हुआ है। हम सहज-ज्ञान की उपलब्धि तब मानेंगे जब वह उसका पूर्ण प्रत्यक्षीकरण कर लेगा अर्थात् जब वह अपने मन में उसे पूरी तरह अभिव्यक्त कर लेगा। इस प्रकार सहजानुभूति (Intution) को अन्तर्मन की क्रिया, आन्तरिक अभिव्यंजना मानता है जो सौन्दर्य तत्व को जन्म देती है। वह उसे आत्मा का अभिव्यंजनात्मक कर्म (expressive activity) मानता है। इसी कर्म के द्वारा कलाकार भावनाओं तथा संवेगों के वेग को नियंत्रण में रखता है और प्रभावों (impressions) को बिम्बों में अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार क्रोचे सहजानुभूति को अभिव्यंजना मानता है—

"It is impossible to distinguish intution from expression in this cognitive process. The one appears with the other at the same instant, because they are not two, but one."

यह अभिव्यंजना मूक, आन्तरिक होती है न कि बाह्य और शाब्दिक। वह मन के भीतर होती है, बाहर पत्थर, चित्र फलक या कागज पर नहीं होती। इसका सामान्य तात्पर्य यह है कि क्रोचे के विचार में कला मात्र (अभिव्यक्ति) है।

क्रोचे इसी आन्तरिक अभिव्यक्ति को कला बताता है। स्कॉट जेम्स ने इसी बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

"In Croce's philosophy art is nothing but intution or the expression (within the mind) of impressions. The mind is always forming or half-forming intutions."

कला-सम्बन्धी विचार

क्रोचे की दृष्टि में कला एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। वह मानता है कि यदि कलाकार के मन:पटल पर कोई बिम्ब मूर्त हो उठता है, तो फिर यह आवश्यक नहीं कि वह उसे किसी माध्यम—चित्रफलक, पत्थर या संगीत-स्वरों के द्वारा व्यक्त करे। वह कल्पना को अन्तर्मन की दृष्टि मानता है। जिस प्रकार की यह सृष्टि होगी, उसी प्रकार का रूप वह बाह्य वस्तु को प्रदान करेगी। प्रत्येक व्यक्ति की इस दृष्टि में निजी विशिष्टता होती है। यही दृष्टि सब कुछ है। जिस कलाकार का जितना अधिक विशद प्रत्यक्षीकरण होगा, उतनी ही विशद और सफल उसकी अभिव्यक्ति होगी और

Scanned by TapScanner

चूँकि अभिव्यक्ति ही कला है, अतः उतनी ही सफल उसकी कला होगी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उत्कृष्टता विषय-वस्तु में न होकर दृष्टि (vision) में होती है। अतः यदि बीभत्स और कुरूप भी कलाकार के मन पर प्रभाव डालते हैं, तो वे भी कला का विषय बन सकते हैं। इसी प्रभाव के परिणामस्वरूप ही तो आज काव्य और कला में सभी प्रकार के विषय सशक्त अभिव्यक्ति पा रहे हैं। उसका स्पष्ट मत है कि काव्य-विषय का चुनाव नहीं किया जा सकता। यह कहना गलत है कि अमुक वस्तु काव्य या कला के लिए अनुचित है। कवि अपने चारों ओर की वस्तुओं से जो संवेदनाएँ ग्रहण करता है, वे चाहे कुरूप और क्षुद्र ही क्यों न हो, उन्हें वह अभिव्यंजना प्रदान करता है। चुनाव तो इच्छा का कार्य है, आत्मा की व्यावहारिक क्रिया का कार्य है, जबकि अभिव्यंजना आत्मा की आतिभ क्रिया का कार्य है। अतः अभिव्यंजना (अर्थात् कला) का चुनाव नहीं हो सकता।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है क्रोचे की दृष्टि में काव्य या कला आन्तरिक कृति है, जो कुछ बाह्य है, वह काव्य नहीं—

"The work of art is always internal and what is called external is no longer a work of art."

संवेदनों को अभिव्यंजनात्मक रूप प्रदान करते ही कला का कार्य समाप्त हो जाता है। जब कलाकार ने अपने मानस में शब्द प्राप्त कर लिया, किसी आकृति या मूर्ति की निश्चित एवं स्पष्ट भावना ग्रहण कर ली अथवा जब उसने किसी संगीत के अभिप्राय का बोध प्राप्त कर लिया, तो यह माना जायगा कि 'अभिव्यंजना' उत्पन्न हो गई और वह पूर्ण हो चुकी है।

"The aesthetic fact is altogether completed in the expressive elaboration of the impressions."

वह सहजानुभूति को शब्दों या रंगों में व्यक्त करना अतिरिक्त क्रिया, अनावश्यक कार्य मानता है। उसके अनुसार मानस-काव्य ही काव्य है और कवि द्रष्टा। कभी-कभी यह स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि कलाकार बाह्य अभिव्यंजना करे, पर इस बाह्य या शाब्दिक अभिव्यंजना का कला के विशुद्ध क्षेत्र से कोई सम्बन्ध नहीं। कलाकार की कलाकार के रूप में स्थिति केवल उन क्षणों में रहती है जब वह अपने को प्रेरणा के क्षणों में पाता है, जीता है और ऐसा अनुभव करता है कि वह विषय के साथ तदाकार हो गया है। यदि ऐसे क्षणों के बाद वह कला-कृति की रचना करता है तो उन क्षणों में वह सच्चा कलाकार नहीं होता। क्रोचे का यह मत यदि उसकी सम्पूर्ण काव्य-विवेचना के समन्वित प्रकाश में देखा जाय, तो उसमें पर्याप्त सत्य मिलेगा। महाकवि शैले ने भी कहा था—

"When coposition begins, inspiration is already on the decline."

बात है भी ठीक। विश्व में जो भी महान् कृतियाँ निर्मित हुई हैं, वे कलाकार

Scanned by TapScanner

की मूल भावना की धूमिल छायाएँ ही तो हैं।

अब प्रश्न उठता है कि यदि बाह्य अभिव्यक्ति—चित्र, मूर्ति, कविता आदि कला नहीं, तो वे क्या हैं ? क्रोचे की दृष्टि में वे स्मृति की सहायक चीजें (aids to memory) हैं। उनकी सहायता से कलाकार अपनी सहजानुभूति को पुनः प्रस्तुत (reproduce) कर लेता है, इनके कारण कलाकार की सहजानुभूतियाँ, बिम्ब आदि नष्ट नहीं होते। वह बाह्य अभिव्यक्ति को व्यावहारिक उपयोगिता के लिए स्वीकार करता है क्योंकि कवि उसी के द्वारा अपनी अनुभूति को दूसरों के लिए चिरकाल तक सुरक्षित रख सकता है। वह कहता है—"कभी-कभी हमारे मानस में ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं, जो प्रातिभ-ज्ञान के रूप में तो होते हैं, किन्तु उनकी इतनी संक्षिप्त या विचित्र-सी अभिव्यंजना होती है कि वे हमारे लिए तो पर्याप्त होते हैं, परन्तु अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों तक सुगमतापूर्वक सम्प्रेषित किये जाने के लिए वे पर्याप्त नहीं होते हैं।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि क्रोचे सम्प्रेषण, अर्थात् अपनी प्रातिभ अनुभूति को दूसरों तक पहुँचाने की बात को भी स्वीकार करता है। वह वर्णना की उपेक्षा नहीं करता, केवल उसे ही प्रमुख नहीं मानता है। यदि वह वर्णना की उपेक्षा करता, तो फिर कविता का जो विवेचन और बचाव किया है, वह क्यों करता ? प्रमुखतः वह आन्तरिक अभिव्यंजना को अभिव्यक्त कर देता है, क्योंकि वह मानता है (और यह ठीक भी है) कि जिसे आन्तरिक अभिव्यंजना की उपलब्धि हो जायेगी, यदि वह उसे व्यक्त करना चाहेगा, तो कर ही देगा। कबीर खिचड़ी भाषा और ऊबड़-खाबड़ शैली के होते हुए भी अपनी बात कहने में पूर्ण समर्थ रहे हैं। इसके विपरीत जिनके मानस में कृति का मूल रूप नहीं उभर पाता या जिन्हें अनुभूति की आभ्यन्तरिक अभिव्यक्ति नहीं हो पाती, वे बाह्य अभिव्यंजना में भी असफल रहते हैं।

कला का आनन्द

क्रोचे के अनुसार कला का आनन्द सफल अभिव्यक्ति से प्राप्त आत्म-मुक्ति का आनन्द है। सफल अभिव्यक्ति के क्षण में कलाकार को ऐसा लगता है जैसे वह मुक्त हो गया हो। उसकी दृष्टि में यदि अभिव्यक्ति सफल नहीं है, तो वह अभिव्यक्ति नहीं। वे कहते हैं—

"Beauty successful expression, or better, expression and nothing more, because expression when it is not successful, is not expression."

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि क्रोचे की दृष्टि में सहजानुभूति, अभिव्यंजना और कला पर्यायवाची हैं। वह अभिव्यंजना को बाह्य नहीं मानसिक या आन्तरिक मानता है तथा उसे मुक्त प्रेरणा कहता है। बाह्य कलाकृतियों aids to memory मात्र हैं। असफल अभिव्यंजना नामक कोई वस्तु नहीं है तथा कला-सृजन की प्रक्रिया के चार सोपान हैं—अरूप संवेदन, कल्पना द्वारा उनकी आन्तरिक अन्विति, आंतरिक अभिव्यंजना और उसका शब्द, रंग-रेखा आदि के द्वारा मूर्तीकरण। इनमें से अन्तिम

Scanned by TapScanner

को क्रोचे अनिवार्य नहीं मानते। वह किसी भी कला-वस्तु को अनुपयुक्त एवं गर्हित नहीं मानता एवं चुनाव को अनावश्यक बताता है। उसके इन्हीं सिद्धांतों को 'अभिव्यंजनावाद' का नाम दिया गया है।

अभिव्यंजनावाद पर आक्षेप

क्रोचे के मत पर सर्वप्रथम आपत्ति यह होती है कि वह बाह्य अभिव्यंजना को अनावश्यक मानकर कलाकार को ऐसी स्वच्छन्दता दे देता है जो अराजकता और अव्यवस्था में परिणत हो सकती है। उनका कथन है कि प्रत्येक वस्तु कलाकार के मस्तिष्क में घटित होती है, सौन्दर्य की अभिव्यंजना आन्तरिक होती है, जिन प्रभावों या पदार्थों को वह मूर्तिमान करता है, वे केवल उसी के लिए मूर्तिमान होते हैं, बाह्य आकार धारण नहीं करते। अब प्रश्न यह होता है कि यदि वे बाह्य रूपाकार धारण नहीं करेंगे, तो आलोचक उनका मूल्यांकन कैसे करेगा? वह अभिव्यंजना के सुन्दर-असुन्दर होने का भी निर्णय कैसे कर पायेगा? कलाकार पर किसी तरह का अंकुश न रहने से वह मनमानी करेगा और बाह्य कलाकृति के अभाव में, दम्भी लोग भी सच्चा कलाकार होने का दावा करेंगे, यह कहकर कि उन्होंने अपने मन में सहजानुभूति कर ली है।

क्रोचे एक ओर तो यह कहता है कि कला सहजानुभूति है, सहजानुभूति वैयक्तिक होती है और वैयक्तिक अनुभूति का कभी पुनर्भाव (repetition) नहीं होता तथा दूसरी ओर वह कहता है कि सुन्दर बाह्य कलाकृति की सहायता से भाविक भी वही सहजानुभूति अनुभव करता है, जो कलाकार की सहजानुभूति होती है। जब सहजानुभूति वैयक्तिक होती है और उसका पुनर्भाव नहीं हो सकता तो फिर भाविक कैसे उसका भावन करेगा? क्रोचे इस आपत्ति का उत्तर नहीं दे पाता। अतः उसके सिद्धान्त-निरूपण में यह एक महत्त्वपूर्ण छिद्र है यद्यपि वह कहता है कि कल्पना की सार्वभौमता के कारण समान बिम्ब विभिन्न व्यक्तियों के मन में समान सहजानुभूतियों को जन्म देते हैं, परन्तु उनका यह मत उसकी वैयक्तिक सहजानुभूति के मत से मेल नहीं खाता। जब कलाकार की सहजानुभूति वैयक्तिक और अभूतपूर्व (unique) होती है, तो फिर आलोचक उसकी कलाकृति को देखकर वैसे ही सहजानुभूति कैसे प्राप्त कर सकेगा? वह स्वयं कलाकार की मानसिक स्थिति को कैसे प्राप्त कर सकेगा? क्रोचे स्वयं इस कठिनाई से अवगत था, तभी तो उसने आलोचक के लिए यह आवश्यक माना कि उसमें ज्ञान हो, कल्पना हो और ऐसी सुरुचि हो जिससे वह कलाकार के दृष्टिकोण को आत्मसात कर सके।

उसका कथन है कि कला संवेदन मात्र नहीं होती। संवेदन और अनुभव तो बाह्य जीवन के अंग हैं और वे तब तक कला का रूप धारण नहीं करते जब तक कलाकार उनसे निर्लिप्त हो कल्पना की सहायता से उनका पुनर्निर्माण नहीं कर लेता। वस्तुतः संवेदनों के इसी अवलोकन, पुनःरचना तथा अभिव्यंजना की प्रक्रिया में कलाकार को आनन्द की उपलब्धि होती है। यहाँ तक तो क्रोचे की बात ठीक है।

Scanned by TapScanner

पर कठिनाई तब होती है जब वह 'कला' शब्द का प्रयोग उस अर्थ में नहीं करता जो सर्वगृहीत तथा सर्वमान्य है। उसके लिए कला का अस्तित्व केवल उस क्षण तक रहता है जब तक कि कलाकार कलम या कूँची या छैनी नहीं पकड़ता, केवल मानस प्रक्रिया में रत रहता है। ज्यों ही वह मानस-क्षेत्र से निकल कर इन उपकरणों की सहायता से बाह्य अभिव्यंजना में प्रवृत्त होगा, कला पीछे छूट जाएगी। सामान्य जन, जिनके लिए कला भौतिक कलाकृति में वास करती है, उसकी कला सम्बन्धी इस धारणा को नहीं समझ पाते और उलझन में पड़ जाते हैं। जिसे अन्य लोग कलाकृति या सौन्दर्य की वस्तु कहते हैं, वह उसके लिए कलाकृति और सौन्दर्य की वस्तु नहीं है, यही सारी उलझन का कारण है। अतः उसका यह सिद्धान्त अनुपयुक्त होकर रह जाता है।

अभिव्यंजना पर अधिक बल देने के कारण कुछ लोगों ने यह समझ लिया कि क्रोचे विषय-वस्तु के चुनाव को आवश्यक नहीं मानता था और उसकी दृष्टि में कोई भी विषय, चाहे वह कितना ही निकृष्ट या हीन क्यों न हो, कला का विषय बन सकता है बशर्ते कि उसकी अभिव्यंजना सफल हो और स्पष्ट हो। इसका परिणाम यह हुआ कि कला में ऊल-जलूल बातें आने का अवसर प्रस्तुत हो गया। क्रोचे की इस धारणा को यदि मान भी लिया जाय, तो इसके घोर दुष्परिणाम होंगे, क्योंकि फिर तो कोई भी सनक, विकृति, कुरूपता, विक्षिप्तता कला का विषय बन जाएगी, यह कहकर कि उसकी सहजानुभूति कलाकार को हो गई थी और कलाकार ने उसे ईमानदारी से अभिव्यक्त किया है। वस्तुतः क्रोचे का यह मत कदापि नहीं था। जब कभी उसने बाह्य, भौतिक कलाकृति की चर्चा की है, उसने आलोचक को पूरा अधिकार दिया है कि उसकी निन्दा करे या उसे स्वीकार करे। वह बाह्य कलाकृति के निर्माण के संबंध में कलाकार को पूरी छूट भी नहीं देता, क्योंकि उसका मत है कि ज्योंही कलाकार मानसिक जगत से हटकर, सहजानुभूति की आन्तरिक अभिव्यक्ति के क्षेत्र से हटकर, उसे भौतिक रूप देने की ओर प्रवृत्त होता है, वह कलाकार के अधिकारों और स्वतन्त्रता से वंचित हो जाता है और उसे जीवन तथा जगत के नीति-बधनों का पालन करना पड़ता है और यह निर्णय करना पड़ता है कि किन संवेदनों को प्रकट करे और जिन्हें नहीं करें। वह कहता है—

"We do not externalize all our impressions. We select from the crowd of intutions."

कलाकार को यह चुनाव इसलिए करना पड़ता है क्योंकि बाह्य कला-कृति की रचना करते समय वह कला के विशुद्ध जगत को छोड़ वास्तविक संसार में प्रवेश करता है जहाँ अर्थ, नीति, प्रचार आदि का महत्त्व होता है तथा जहाँ जीवन अर्थ तथा नीति सम्बन्धी परिस्थितियों से प्रभावित होता है। सारांश यह है कि वह बाह्य कलाकृति के निर्माण को विशुद्ध कला-प्रक्रिया नहीं मानता, उसे विशुद्ध कला से निम्न तथा हीन भी कहता है, क्योंकि कला अपने शुद्ध रूप में उपयोगिता या नैतिकता या व्यावहारिक मूल्यों से स्वतन्त्र होती है, पर जब कोई कलाकार बाह्य

Scanned by TapScanner

कला-कृति का निर्माण करे, तो उसका आदेश है कि वह नीति तथा सदाचार के नियमों का पालन करे। वह काव्य को कवि के पूर्ण व्यक्तित्व की सृष्टि मानता है, जिसमें नैतिकता और सामाजिकता की उपेक्षा नहीं हो सकती। क्रोचे की इसी बात को स्कॉट जेम्स ने बड़े सुन्दर और सरल शब्दों में इस प्रकार कहा है—

"...the artist may see what he likes, but he must not say what he likes. He is as free as the wind when his art is not what we mean by art; but when he begins to create as we understand creation, his liberty is gone."[१]

क्रोचे ने इस पर बल नहीं दिया कि कलाकार का काम दूसरों तक अपने भावों को पहुंचाना (Communication) है और कलाकृति दूसरों को प्रभावित करने—उनको आनन्द प्रदान करने, शिक्षा देने या उनका भावोत्कर्ष करने के लिए निर्मित होती है तथा संसार उसका मूल्यांकन उसकी इसी सफलता के अनुपात में करता है। क्रोचे के मत से निवेदन या संप्रेषण (Communication) एक व्यावहारिक तथ्य है, वह क्रियात्मक मनोवृत्ति का व्यापार है, वह किसी अनुभव को सुरक्षित रखने अथवा उसे फैलाने की इच्छा से निष्पन्न होता है और इसीलिए वह कला से बाह्य है। पर वस्तुतः निवेदन कला का तात्विक धर्म है। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य ने सामाजिक मन विकसित किया है। जो कुछ वह कहता है, चेतन रूप से या अचेतन रूप से, सब दूसरों से निवेदित करता है। यही ऐस्थैटिक अनुभव ठीक माना जाता है, जो निवेदन में सफल होता है, कलाकार जीवन के प्रति उपेक्षा का भाव धारण नहीं कर सकता, वह दुनिया से कटकर नहीं रह सकता, पर क्रोचे ने कलाकार को ऐसा ही करने के लिए आदेश दिया है। निश्चय ही दार्शनिक क्रोचे ने कथाकार को ाह्य अभिव्यंजना की स्वतन्त्रता न देकर या उसे हीन कार्य कहकर उसके प्रति अन्याय किया है और यही उसके सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी है। जिस प्रकार के आदर्श लाकार की कल्पना क्रोचे ने की है, वास्तविक जगत् में ऐसा कलाकार कदाचित् ही ाले; क्योंकि उसका आदर्श कलाकार तो वह है जो केवल सहजानुभूति में मग्न ता है और उसकी बाह्य अभिव्यक्ति नहीं करता। वस्तुतः कला के लिए भाषा माध्यम अनिवार्य है—यह दूसरी बात है कि वह भाषा शब्दों की हो, रंगों की और चाहे पत्थर या संगीत स्वरों की हो। यही भाषा कलाकार और भाविक मिलाने वाली कड़ी है, इसी के द्वारा भाविक कलाकृति को समझता तथा उससे ानुभूति प्राप्त करता है। जिस कला की भाषा जितनी अधिक प्रभावशाली, रम- क और कलापूर्ण होती है, वह उतनी ही उत्कृष्ट मानी जाती है।

क्रोचे ने अपने सिद्धान्त में जीवन के प्रति उपेक्षा प्रकट की है, उसने कलाकार ास्तिष्क में विचरण करने वाले अरूप, अस्पष्ट, अर्थहीन प्रभावों (impressions)

---

[१] Scott James "The Making of Literature' P. 229

Scanned by TapScanner

की आन्तरिक अभिव्यक्ति को कला कहा है, पर ये प्रभाव अन्वित होने से पूर्व, जीवन से सम्बद्ध होने से पूर्व कैसे होते हैं, कोई नहीं बता सकता। वस्तुतः कला और जीवन का अटूट सम्बन्ध है, कलाकार को जीवन की वास्तविकता पर ही कला का निर्माण करना पड़ता है। जीवन और मानव-स्वभाव के मूलभूत तत्त्वों, संवेगों और अनुभवों को ही कलाकृति में स्थान देकर कलाकार अपनी रचना को निवेदनीय बना पाता है। यह ठीक है कि साहित्यकार या कलाकार फोटोग्राफर की तरह जीवन के किसी विशिष्ट क्षणमात्र को अंकित नहीं करता, अपितु चित्रकार की तरह जीवन को इसके नैरन्तर्य में, मानव को उसकी सार्वभौमता में चित्रित करता है। पर उसका विषय जीवन ही होता है। यह सच है कि कलाकार की पद्धति सहजज्ञान की पद्धति है, बौद्धिक तर्क की नहीं, फिर भी उसका सहज-ज्ञान जीवन और उसकी प्रक्रिया से परिचित होता है। अतः कलाकार जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसी प्रकार चूँकि निवेदनीयता कलाकार के लिए आवश्यक है, उसे अपनी अभिव्यंजना निवेदनीय बनानी पड़ेगी। अपने जीवनानुभवों को दूसरों के लिए संवेद्य बनाने के लिए, न केवल यह आवश्यक है कि वे जीवनानुभव सारी मानव-जाति के जीवनानुभव हों, अपितु यह भी आवश्यक है कि उनके निवेदन की भाषा सहज बोधगम्य हो। अतः कला-अभिव्यंजना अवश्य है पर प्रथम तो वह जीवन की अभिव्यंजना है, जीवन के उस रूप की अभिव्यंजना है जिसे कलाकार ने स्वयं देखा और अनुभव किया है और दूसरे वह ऐसी अभिव्यंजना है जिसे अन्य समझ सकें।

सारांश यह है कि क्रोचे का सिद्धान्त दर्शन के क्षेत्र में तो सही हो सकता है पर काव्य-शास्त्र या कला-विवेचन के संदर्भ में उसमें कई त्रुटियाँ दिखाई देती हैं उसे अनुपयोगी एवं अधूरा ही कहा जायगा।

Scanned by TapScanner